जैनमत

(जैन साधु सिद्धकरण जी से मसूदा में शास्त्रार्थ—६ जौलाई से १६ जौलाई, १८८१ तक)

जब आषाढ़ बदि १२, संवत् १९३८ तदनुसार २३ जून, सन् १८८१ को स्वामी जी धर्मोपदेश के निमित्त मसूदा पधारे तो कई दिन तक निरन्तर व्याख्यान देने के पश्चात् ५ जौलाई, सन् १८८१ को राव बहादुरसिंह साहब रईस मसूदा ने अपनी रियासत के सम्मानित जैनियों को बुलाकर कहा कि तुम अपने किसी विद्वान् पण्डित या मतावलम्बी को बुलाओ ताकि उससे स्वामी जी का शास्त्रार्थ कराया जावे और सत्यासत्य का निर्णय हो।

जैनियों ने उत्तर दिया कि हम अपने साधु सिद्धकरण जी को बुलाते हैं, वे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे।

रावसाहब ने कहा कि वे कहाँ हैं? जैनियों ने उत्तर दिया कि वे ग्राम

सर्वाड़ किशनगढ़ क्षेत्र में यहाँ से १६ कोस पर हैं। रावसाहब ने कहा कि हमारे यहाँ से सवारी ले जाओ और तुम में से कोई जाकर साधु जी को बुला लाये। उन्होंने उत्तर दिया कि सवारी पर बैठकर वे नहीं आते परन्तु उनका चतुर्मासा यहाँ पर करना निश्चित हुआ है, इसलिए विश्वास है कि कल आ जावेंगे। दैवयोग से प्रातःकाल आषाढ़ सुदि १०, संवत् १९३८ तदनुसार ६ जौलाई, सन् १८८१, बुधवार को साधु जी वहाँ आ विराजे। आषाढ़ सुदि १३, अर्थात् ९ जौलाई सन् १८८१ शनिवार को स्वामी जी महाराज अपने नियमानुसार भ्रमण को गये तो सिद्धकरण साधु से जो शौचादि से निवृत्त होकर आते थे, मार्ग में भेंट हो गई। साधु ने स्वामी जी के निकट आकर कहा कि आपका क्या नाम और कहाँ से पधारना हुआ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है और अजमेर से आया हूँ। फिर स्वामी जी ने कहा कि आपका क्या नाम है और कहां से आना हुआ। साधु जी ने कहा कि मेरा नाम सिद्धकरण है और सर्वाड़ किशनगढ़ क्षेत्र से आया हूँ, चार मास यहीं रहूँगा।

स्वामी जी—यहाँ पर आप कहाँ ठहरे हैं?

साधु ने कहा कि एक उपाश्रय में।

स्वामी जी ने कहा कि आप ही को जैनियों ने बुलाया है?

साधु०—हाँ मुझी को।

और साधु जी ने कहा कि आपका पेट तो बड़ा मोटा है, क्या इसमें ज्ञान भरा है? आप लोहे का तवा बाँध लीजिये नहीं तो फट जायेगा। आपको ज्ञान-अजीर्ण हो रहा है।

स्वामी जी ने उसका उस समय उत्तर देना अनुचित समझ साधु से यह प्रश्न किया कि आप लोग मुख पर पट्टी बाँधते और गर्म जल क्यों पीते हो?

साधु जी ने कहा कि जो आप भी मुख पर पट्टी बाँधें तो मैं इसका उत्तर दूँ।

अभी इनमें परस्पर वादानुवाद हो ही रहा था कि रावसाहब ने जो प्रायः अपने महल की छत पर बैठ प्रातःकाल दूरवीक्षण द्वारा स्वामी जी को भ्रमण करते देखा करते थे, देखा कि किसी से स्वामी जी वार्ता कर रहे हैं। तत्काल ही रावसाहब घोड़े पर सवार होकर स्वामी जी के पास आ उपस्थित हुए। रावसाहब को देख साधु चलने लगा। तब रावसाहब ने साधु जी से कहा कि ठहरो, प्रश्न करो, क्यों जाते हो? अन्त को रावसाहब के आते ही साधु जी चले ही गये और स्वामी जी महाराज और राव बहादुरसिंह जी मार्ग

में परस्पर वार्ता करते हुए निज स्थान को पधारे। फिर स्वामी जी ने श्रावण बदि २, संवत् १९३८, बुधवार तदनुसार १३ जौलाई, सन् १८८१ को निम्न-लिखित प्रश्न पंडित छगनलाल कामदार और ज्योतिषी जगन्नाथ आदि सम्मानित व्यक्तियों के हाथ सिद्धकरण साधु के पास भेजे।

प्रश्न—जैन-मतान्तर्गत तुम लोग ढूँढ़िये जो मुख पर पट्टी बाँधना अच्छा जानते हो, यह तुम्हारी बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणों की रीति से सिद्ध नहीं है। इससे जो तुम ऐसा मानते हो कि मुख की वायु से जीव मरते हैं तो भी ठीक नहीं क्योंकि जीव अजर-अमर हैं और तुम भी ऐसा ही मानते होगे। जो तुम कहो कि जीव तो नहीं मरता परन्तु उसको पीड़ा अर्थात् दुःख देवें तो हम पाप के भागी होते हैं तो भी सर्वथा ठीक नहीं क्योंकि ऐसा किए विना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। इसमें जो तुम कहते हो कि जहाँ तक बन सके, वहाँ तक जीवों की रक्षा करनी चाहिए। कारण सर्व वायु आदि पदार्थ जीवों से भरे हैं। इसलिए हम लोग मुख पर कपड़ा बाँधते हैं कि मुख से उष्ण वायु निकलने से बहुत से जीवों को दुःख और बाँधने से थोड़े जीवों को कष्ट पहुंचता है तो यह भी कहना आप लोगों का अयुक्त है क्योंकि कपड़ा बाँधने से जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है। कारण यह है कि मुख पर कपड़ा बाँधने से गर्मी रखने से उष्णता अधिक होती है जैसे किसी मकान का द्वार बन्द हो और पर्दा डाला जाये तो उसमें गर्मी अधिक होती है और खुला रखने से कम होती है। इससे विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बाँधने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है। इसलिये जो कोई मुख पर कपड़ा बाँधते हैं वे जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाने से अधिक पापी होते हैं। जो नहीं बांधते वे उन बांधने वालों से अच्छे हैं। किन्तु जब तुम मुख पर कपड़ा बाँधते हो तो मुखद्वारा वायु रुककर नाक के छिद्र से जो बाहर निकलती है, वह जीवों के लिए अधिक दुःखदायी होती है। जैसे मुख से कोई अग्नि फूंके और कोई नल से तो नल से वायु चारों ओर से रुक अधिक बलवान् हो अग्नि से लगती है। इसी प्रकार नाक की वायु जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाती है। इससे तुम हिंसक हो। जो तुम कहो कि हम नाक और मुख पर एक कपड़ा बांधेंगे तो पूर्वोक्त रीति से मुख और नासिका दोनों की गर्मी बढ़कर दुगुनी हिंसा होगी। इससे मुख और नासिका पर कपड़ा बाँधना कदापि योग्य नहीं। दूसरे कपड़ा बाँधने से बोला भी ठीक-ठीक नहीं जाता। निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक कर देना दोष है। दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध है। शरीर से जितना वायु निकलता है वह दुर्गन्ध-युक्त ही है। जब वह रोका जाये तो अधिक दुर्गन्ध बढ़ता है जैसा कि बन्द

जाजरूर। इस प्रकार मुखादि प्रक्षालन न करने और मुख पर कपड़ा बाँधने से अधिक दुर्गन्ध होकर अधिक रोग उत्पन्न करता है जैसा कि मेले आदि में। और न्यून दुर्गन्ध विशेष रोग नहीं करता, यह बात प्रत्यक्ष है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने वाला अधिक अपराधी होता है। जैसा कि आप लोग दन्तधावन और स्नानादि कम करने से दुर्गन्ध बढ़ाते हो जिससे रोगोत्पत्ति कर बुद्धि और पुरुषार्थ को नष्ट करके धर्मानुष्ठान के बाधक होते हो। जैसे जाजरूर (मलागार) के शुद्ध करने वालों की दुर्गन्ध के संग से न्यून बुद्धि होती है वैसे आप लोगों की क्यों नहीं होती होगी। जब दुर्गन्धयुक्त पुरुष की बुद्धि अति मन्द होती है तो उसके संगियों की क्यों नहीं होती होगी।

("देश हितैषी" खंड १, संख्या २, पृष्ठ ७ से १३, ज्येष्ठ मास, संवत् १९३९)

"जो तुम लोग कच्चा जल पीने आदि में दोष गिनते और उष्ण में नहीं, यह भी तुमको अत्यन्त भ्रम हुआ है क्योंकि ठंडे के जीव उष्ण जल करने में अधिक दुःख पाते हैं और उनके शरीर जीवित जल में घुल जाते हैं जैसे साँप का अर्क। सिद्ध हुआ कि उक्त जल के पीने वाले मानो माँस का जल पीते हैं और जो ठंडा जलपान करते हैं वे (इन जीवों को) गर्म जल पीने वालों की अपेक्षा थोड़ा दुःख देते हैं। दूसरे वे जीव जठराग्नि में प्राप्त होकर भी बहुत से प्राण-वायु के साथ बाहर भी निकल जाते हैं। इससे ठंडा जल पीने वाले तुमसे बहुत कम जीवों को दुःख देने वाले ठहरते हैं। जो तुम कहो कि न हम जल गर्म करते हैं और न हम किसी को शिक्षा अपने लिए जल को उष्ण करने की करते हैं, तो भी तुम अपराध से नहीं छूट सकते क्योंकि जो तुम गर्म जल न लेते, न पीते और न उष्ण करने की शिक्षा करते तो वे अधिक जल क्यों गर्म करते। जो ऐसा कहो कि पाप करने वालों को दोष लगता है, अन्य को नहीं। यह भी कथन ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि चोरी करने वाला तो आप ही चोरी करता है परन्तु शिक्षा करने वाले बहुतों को चोर बना देते हैं, इसलिए तुम ही अधिक पापी हुए। फिर जल के गर्म करने में अग्नि जलाते और उस जल से भाप ऊपर उड़ाने से भी जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है। इस कारण यह भी तुम्हारा कथन व्यर्थ हुआ।

तुम्हारे मत में ऐसी-ऐसी बहुत-सी बात अयुक्त हैं, जैसे एक छोटे से अर्थात् पैसा भर के कुण्ड में अनन्त जीवों का रहना। इसमें जो कोई तुमसे प्रश्न करे कि जिसमें जीव रहते हैं उसका अन्त है, उसमें रहने वालों का अन्त क्यों नहीं? फिर तुमसे उसके उत्तर में केवल चुप वा हठ के अतिरिक्त और कुछ न बन पड़ेगा। यह थोड़ा सा अर्थात् समुद्र में से बिन्दुवत् तुम्हारे मत के

सिद्धान्तों में दोष दिखलाया है। जो तुम सम्मुख बैठ कर चर्चा करो तो तुमको और तुम्हारे साथियों को तुम्हारे मत के दोष भली-भाँति विदित हो जायें परन्तु जब कोई विद्वान् तुम्हारे सम्मुख तुम्हारे मत के खण्डन-विषय में चर्चा करना चाहे तो भी तुम कभी न चाहोगे क्योंकि जो तुम्हारा मत निर्दोष होता तो दूसरे मत वालों से संवाद करने में कभी न डरते। इसका दृष्टान्त यह है कि तुम अपनी पुस्तकों को बहुत गुप्त रखते और अपने मतवालों के अतिरिक्त दूसरों को देखने के लिए नहीं देते। यह तुम्हारा सिद्धान्त पुस्तक और तुम्हारे सिद्धान्तों को तुम्हारी ही बातें झूठी कर देती हैं। जिसका चाँदी का रुपया है, वह सर्राफा और सुनारादि को दिखलाने में क्यों डरेगा? देखो! हमारा वेद-मत सच्चा है इसमे हमको किसी के साथ चर्चा करने में डर नहीं होता। जैसे तुम डर के कारण हठ करते हो कि मुख पर कपड़ा बाँधे विना तुमसे हम बात नहीं करते। यह तुम्हारा केवल छल है क्योंकि "नाच न आवे आँगन टेढ़ा।"

हस्ताक्षर—दयानन्द सरस्वती

जब उक्त प्रश्नों को लेकर साधु जी के स्थान पर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि साधु जी बहुत से स्त्री और पुरुषों के मध्य में बखान (व्याख्यान) कर रहे हैं तब यह लोग वहां जा बैठे। जब बखान पूर्ण हो चुका तब पंडित छगनलाल मंत्री राव मसूदा ने जो उक्त प्रश्न ले गये थे सब लोगों के सम्मुख पढ़कर सुना दिये और कहा कि इनका उत्तर देना आपको योग्य है। इस पर साधु जी ने कहा कि जो तुम लोग मुख पर पट्टी बाँधो तो मैं उत्तर दूँ। तब उन लोगों ने कहा कि हम मुख पर पट्टी बाँधना पाप गिनते हैं। आप इन प्रश्नों का उत्तर दें, जब पट्टी का बाँधना सिद्ध कर देंगे तब हम प्रसन्नतापूर्वक पट्टी क्या जैसा आप हमसे कहेंगे, स्वीकार करेंगे। यह सुन साधु ने कहा कि मैं उत्तर नहीं दे सकता और उठ कर भीतर को ओर चले गये। फिर उन्होंने सब वृत्तान्त स्वामी जी और राव साहब को सुनाया और अपने-अपने स्थान को पधारे। तत्पश्चात् साधु जी ने तीसरे दिन अर्थात् १५ जौलाई, सन् १८८१ को सुजानमल कोठारी के हाथ स्वामी जी के प्रश्नों के निम्नलिखित उत्तर भेजे।

"साधु सिद्धकरण जी की ओर से प्रश्नों के उत्तर"

प्रश्न=मुँह बांधने में क्या धर्म है? हमको तो पाप प्रतीत होता है इत्यादि।

उत्तर—जबकि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है, उस मकान के द्वार में होकर वायु भीतर जाती है तो वायु के जीव सब मर जाते हैं। जब बारड़ा (द्वार) बन्द किया जावे वायु की ओट से सब जीव बच सकते हैं और

बाहर भी उस ज्वाला का तेज कपड़े की ओट से ठंडा होकर जाता है जैसा कि उष्ण जल की भाप। बाहर एक गर्म की हुई चीज की भाप के निकलते समय कपड़े की ओट दो तो फिर ओट से बचकर भाप बाहर जावेगी वह फिर वैसी गर्म कभी न रहेगी वा आड़ा हाथ देकर देखो तो पहले जो हाथ देगा उसका जलेगा। वही जल की भाप निकलेगी तो दूसरी ओर जो आजूबाजू जो हाथ रहेगा कभी वैसा नहीं जल सकता। यह तो प्रत्यक्ष दीख पड़ता है और जीव अजर, अमर है परन्तु वायु के जीव का शरीर है। विना शरीर के जीव नहीं रह सकता। दूसरे खुले मुख रहने से प्रत्यक्ष दोष भी है कि उसको सब कोई समझ सकता है क्योंकि जो कोई बड़े मनुष्य के निकट बात करे तो मुंह के पल्ला लगा रहता है क्योंकि जिससे थूक न उछले वा अपनी दुर्गन्धता का श्वास उनके द्वारा न पहुंचे तो आपड़ों से (आप सरीखे) बुद्धिमान होकर यह क्या प्रश्न पूछा। आपको भी तो यह विचार करना चाहिए कि वेद की पुस्तकों को खुले मुंह बाँचना क्या पुस्तक के थूकारा वा दुर्गन्ध-श्वासा नहीं पहुंचती होगी? इसलिए अवश्य आपको उघाड़े (खुले मुख) रहना उचित नहीं और हम तो साधु हैं, हम निरर्थक जोड़ नहीं करते क्योंकि यह बात पक्षपात कहलाती है, धर्म के अतिरिक्त साधु को कुछ प्रयोजन नहीं। कोई हमारे निकट आवे और सुनना चाहे तो सुने। जाने-आने का कुछ प्रयोजन नहीं। हाँ यह पक्की देखी कि कुछ धर्म की बात मानेंगे तो जा भी सकते हैं।

हस्ताक्षर—सिद्धकरण

(देश-हितैषी, खंड १, संख्या ४ पृष्ठ ७ से १० तक)

उत्तर पक्ष। स्वामी दयानन्द जी महाराज की ओर से उत्तर—

उत्तर—जबकि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है इत्यादि। यह तुम्हारा मुख पट्टी बाँधने का उत्तर अविद्यारूप है क्योंकि बाहर का वायु ही सब पदार्थों का जीवनहेतु है। विना इसके संयोग के कोई भी प्राणी नहीं बच सकता और उसके सम्बन्ध के विना अग्नि भी नहीं जल सकती। जैसे किसी प्राणी वा जलती अग्नि को बाहर की वायु से वियुक्त करें तो वह उसी समय मर जाता है। और दीपकादि अग्नि भी बुझ जाता है क्योंकि इसके जलाने आदि का कारण बाहर का वायु है। न मानो तो बन्द कर देख लो। इसलिए यह तुम्हारा अविद्यारूपी उत्तर सिद्ध होता है। यद्यपि ऐसी अन्यथा बातों पर लिखना व्यर्थ है क्योंकि जो किसी से हो ही नहीं सकता। देखो जो मकान के द्वार और छिद्र बिलकुल बन्द किये जायें तो अग्नि कभी न जलेगी और एक ओर से ओट किया जाये तो दूसरी ओर से जहाँ मार्ग पाता है वहाँ से अतिवेग से चलकर

वही वायु के जीवों से उसका सम्बन्ध होता है और कपड़े की ओट से भी वह कभी ठंडा नहीं हो सकता किन्तु वह एक ओर से रुक कर दूसरी ओर से गर्म हो जाता है ज्वाला की जितनी गर्मी है। जबतक बाहर की वायु से सम्बन्ध और संघात छूट एक-एक परमाणु पृथक्-पृथक् होकर न मिल जायें तबतक अग्नि ठंडा कैसे हो सकता है। और सर्वत्र वायु में विद्युतरूप अग्नि भी (कि जहाँ वायु के शरीर वाले जीव हैं) व्याप्त हो रहा है फिर वायुस्थ जीव क्यों नहीं मर जाते? जब एक ओर कपड़े आदि से आड़ा किया जाये तो दूसरी ओर गर्म वायु अधिक इकट्ठा फैलने और टपकने से शीघ्र ठंडा नहीं होता किन्तु जो चारों ओर से खुला रहे तो शीघ्र ठंडा हो जाता है जैसे कि मैदान की अग्नि। जब अग्नि की ओर आड़ा हाथ दिया जाये तो हाथ की आड़ से दूसरी ओर गर्मी फैलेगी। आड़े हाथ करने से गर्मी कुछ भी कम नहीं हो सकती इससे यह अविद्वानों की बात है। देखो जो सूर्य्य की ओर हाथ करे तो क्या सूर्य्य की गर्मी घट जाती है और क्या जिस बर्तन में जल गर्म किया जाता है उसका मुख खुला रखने से अधिक गर्मी और आधा वा तीन भाग बन्द करने से अर्थात् आधे वा चौथे भाग से भाप अधिक और जोर से निकल कर बाहर की वायु में नहीं फैलती। और जो उसका मुख सर्वथा बन्द किया जाये तो क्या बर्तन टूट फूट और उड़ न जायेगा? क्या जिसने अग्नि की ज्वाला के सामने आड़ की तो उसकी ओर गर्मी कम होने से दूसरी ओर अधिक गर्मी नहीं होती। क्या हाथ के आड़ किये हाथ से अग्नि के दूसरी ओर जिस किसी के हाथ और कोई वस्तु हो तो वह अधिक तप्त नहीं होती और जब चारों ओर से आड़ कर अग्नि को रोका जावे तो गोलाकार होकर ऊपर को क्यों न चढ़ेगा और भाप के दूसरी ओर हाथ जैसा कि इधर का जलता है वैसा उधर का न जलेगा और हाथ की आड़ के हाथ में गर्मी इस लिये अधिक नहीं लगती कि वह अगल बगल होकर ऊपर उठ जाती है। देखो तुम्हारी यहाँ अत्यन्त भूल है क्योंकि जो वायु के शरीर वाले जीव गर्म वायु से मर जाते तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में जबकि वायु अत्यन्त तप्त हो लू चलता है तब क्या सब जीव मर जाते हैं और गर्म वायु के जीव जबकि पौष मास में अतिशीत पड़ता है तब क्या मर जाते हैं? इससे यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या ही है क्योंकि जो ऐसा होता तो परमेश्वर इस सृष्टि में अग्नि और सूर्य्यादि को क्यों रचता? इससे जो तुम सत्यासत्य बातों का निश्चय करना चाहो तो वेदादि सत्यशास्त्र पढ़ो और सुनो जिससे यथार्थ ज्ञान पाके धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी फल को प्राप्त हो सको। जो ऐसा न करके अपने मत के ग्रन्थों के विश्वास में रहोगे तो यह उत्तम मनुष्य जन्म व्यर्थ ही नष्ट करोगे।

('देश हितैषी, पृष्ठ ८ से १० तक, खंड १, संख्या ५, भादों, संवत् १९३९)।

बड़े आश्चर्य की बात है कि जीवों को अजर, अमर मान कर फिर उनका मरण भी मानते हो। जो तुम खुला मुख रखने में प्रत्यक्ष दोष लिखते हो तो प्रत्यक्ष होता है कि आप प्रत्यक्ष के लक्षणादि विद्या को ही नहीं जानते। इसी से किसी बड़े मनुष्यादि से बातें करने में पल्ला लगाना अच्छा समझते हो जो ऐसा है तो फिर वैसा क्यों नहीं करते। छोटे मनुष्य के सम्मुख हर समय मुख बांधे रहते हो। क्या बड़े मनुष्य का थूका छोटे मनुष्य के साथ लग जाना अच्छा समझते हो? क्या बड़े के मुख में कस्तूरी घुली होती है छोटे के नहीं? यदि बड़े छोटों का विचार है तो अपने चेलों के सम्मुख मुख क्यों बाँधे रहते हो? क्योंकि जब किसी बड़े मनुष्य से बोला करो तब बांध लिया करो। सदैव व्यर्थ बातें क्यों किया करते हो। देखो इस बात को तुम नहीं जानते, बड़े मनुष्यों से बात करते समय पल्ला लगाने से यह प्रयोजन है कि सभा में कभी गुप्त वार्ता करनी पड़ती है, यदि मुख खुला रखा जावे अर्थात् कपड़ा न लगावें तो अन्य मनुष्य जो निकट बैठे हों अवश्य सुन लें। जहां कोई तीसरा मनुष्य होता वहां बातें करने में पल्ला नहीं लगाते और क्या पल्ला लगाने से दुर्गन्ध रुक सकता है? इसमें इतना ही प्रयोजन है कि जो वायु को रोक के न बातें करें तो उसके फैलने के साथ ही शब्द भी फैल जाये और कान में वायु लगने से ठीक-ठीक सुना भी न जाये जैसा कि वायु के वेग से चलने में ठीक-ठीक नहीं सुना जाता। देखो! कैसे अन्धेर की बात है, क्या दुर्गन्ध को कान ग्रहण कर सकता है? नहीं, किन्तु सुगन्ध दुर्गन्ध का ग्रहण नासिका ही से होता है। इस बात का आपने प्रयोजन नहीं समझा है जैसे गानविद्या न जानने वाला ध्रुपद को समझ नहीं सकता क्योंकि जो विद्या की बातें हैं उनको विद्वान् ही समझ सकता है, अविद्वान् नहीं। हम शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को वेद समझते हैं, कागज स्याही को नहीं और कागज, स्याही को जड़ होने से सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान वा सम्बन्ध नहीं होता। क्या जो तुम्हारे जैनी लोगों के ग्रन्थ वा पुस्तकों के कागज लेखादि हैं, उनको बनाने वालों ने मुख बांधकर बनाया और लिखा होगा? हम खुले मुख से वेदों का पाठ करना अत्युत्तम समझते हैं क्योंकि मुख बांधने से स्पष्ट यथार्थ उच्चारण नहीं होता जैसा कि तुम्हारा सब अक्षरों का नासिका से अशुद्धोच्चारण होता है। इसका उत्तर हमने पहले ही लिख दिया था कि निरनुनासिक को मुख बाँध कर सदैव सानुनासिक बोलना शुद्ध नहीं परन्तु इसके समझने को विद्या चाहिये और जो आप साधु बनते हो तो साधु के क्या लक्षण हैं? और आप स्वार्थी हो वा परमार्थी। जो स्वार्थ की इच्छा अर्थात् "निरर्थक हम नहीं बोलते" ऐसा क्यों कहते हो और जो स्वार्थी होतो साधु क्यों बनते हो? जो आपको पक्षपात नहीं होता तो मुख पर पट्टी बांधने

का झूठा आग्रह क्यों करते ? कि विना मुख पर पट्टी बांधने के हम नहीं बोलते यदि ऐसा नियम था तो प्रथम ही प्रथम (जंगल में भ्रमण करते समय) हमसे क्यों बोले थे कि आपका क्या नाम है ? इत्यादि खुले मुख बोले। और अन्य जनों से भी बातें क्यों किया करते हो ? और भोजन समय (स्वप्रयोजन के लिये) क्यों मुख खोलते हो ? क्या तुम अपने शरीर-पोषण, भोजन, छादन, मलविसर्गादि कर्म मौन के अतिरिक्त नहीं समझ सकते होगे ? यह बात मिथ्या है क्यों कि जब हम सुनना चाहते थे तब तो तुम सुनाने को खड़े भी न हुए और जो तुम कहीं आते जाते नहीं तो यहाँ कहाँ से आ गये ? क्या एक ही स्थान पर शिला के समान स्थिर रहते हो ? भला जिसका रुपया चांदी का है उसको कच्चेपन का क्या भय है ? क्या सबके सामने दिखलाने से ताम्र का भी हो जाता है ? क्या तुम वहीं जाते हो जहां तुम्हारी बातें विना समझे बूझे मानलेवें ? हाँ ठीक है तुम तो उन्हीं गोबर-गणेशों को सुना सकते हो, जो प्रसन्नता से "सत्यार्थ" और "प्रमाण" शब्दों का हल्ला करके तुमको संतुष्ट किया करें, चाहे सत्य कहो वा असत्य। मान ही लें जैसे दिल्ली की मिठाई। न पूछें न शंका करें, न झूठ का खंडन करें। ठीक समझ लिया जैसे तुम, वैसे तुम्हारे, सिद्धान्त हैं मानो बालकों का खेल। जो मुख की पट्टी का उत्तर तुम नहीं दे सकते तो छोटे से कुण्ड में अनन्त जीवों के होने आदि का उत्तर देना, तुम क्या किन्तु तुम्हारे तीर्थंकरों ने भी इन विद्या की बातों को नहीं समझा था। जो समझने होते तो ऐसी असंभव बातें क्यों लिख जाते ? सत्य है जबसे तुम लोगों ने वेदविरोधी होकर वेदोक्त सत्य मत को छोड़ के कपोलकल्पित असत्य मत को ग्रहण किया है तब ही से विद्यारूप प्रकाश से पृथक् होकर अविद्यारूप अन्धकार में प्रविष्ट हो गये हो। इसी से ईश्वर, जीव और पृथिवी आदि तत्त्वों को यथावत् नहीं जान सकते हो।

आओ ! अब भी क्यों झूठ पक्षपात करके वेदोक्त सत्य मत का स्वीकार क्यों नहीं करते और मुख पर पट्टी बाँधने आदि विद्याविरुद्ध कपोल-कल्पित बातों को क्यों नहीं छोड़ते और अन्यथा आग्रह करते जाते हो? सत्य है जो तुम लोगों के आत्माओं में वेदविद्या का थोड़ा भी प्रकाश होता तो ऐसी निर्मूल झूठी बातों के लिखने में लेखनी कभी न उठाते और जो तुम्हारे सिद्धान्त सत्य होते तो चर्चा करने में झूठे हीले के बहाने क्यों पकड़ते और ऐसे अशुद्ध लेख का व्यर्थ परिश्रम क्यों करते ? यदि अब भी सच्चे हो तो सम्मुख आकर थोड़े काल में सत्यासत्य का यथार्थ निश्चय क्यों नहीं कर लेते क्योंकि जो वाद-प्रतिवाद से बात सिद्ध होती है वही मानने योग्य है। जिस किसी ने मत मतान्तर वालों से पक्ष-प्रतिपक्ष पूर्वक वादानुवाद नहीं किया वह सत्यासत्य को ठीक-ठीक कभी नहीं जान सकता। इसीलिये तुम भी ऐसा क्यों नहीं करते ? परन्तु क्या करो नाच न

आवे आँगन टेढ़ा । **हस्ताक्षर—स्वामी दयानन्द**

यह उपर्युक्त पत्र १६ जौलाई, सन् १८८१ को पण्डित वृद्धिचन्द, जगन्नाथ जोशी, व्यास रामनारायण, बाबू बिहारीलाल तथा अन्य सर्दार लोगों के हाथ स्वामी जी ने साधु जी की ओर भेजा। जब वे लेकर चले तो उस समय लगभग दो सौ मनुष्यों के इकट्ठे हो गये थे। इन्होंने पहुंचते ही साधु जी को उक्त पत्र पढ़ सुनाया और निवेदन किया कि अब आप इसका फिर उत्तर दीजिये। परन्तु पाठकगण ! उत्तर देने में तो विद्या चाहिये। न जाने पहले किस की सहायता से उत्तर लिखा था। विशेष क्या लिखूं साधु जी के छक्के छूट गये ।

अन्त को उन लोगों ने जब बहुत कहा सुना तब यही मुख से निकला कि हमारे से तो उत्तर कोई नहीं बन आता। आपां तो साधु हैं। जब लोगों ने देखा कि अब साधु जी ने ही अपने मुख से हार मान ली तो अब विशेष कहना उचित नहीं, यह समझकर नमस्ते करके चले आये और सब वृत्तान्त राव साहब और स्वामी जी से निवेदन कर अपने-अपने स्थानों को चले गये।

हस्ताक्षर—वृद्धिचन्द श्रीमाल, मसूदा

("देश हितैषी" खंड १, संख्या ६, संवत् १९३५ आश्विन, पृष्ठ १२ से १५ तक।)
(दिग्विजयार्क पृ० ३१, लेखराम पृ० ६७५ से ६८०)

ईसामसीहा पर विश्वास

(मसूदा में बिहारीलाल ईसाई से शास्त्रार्थ—जौलाई, १८८१)

श्रावण शुक्ला ४, सं० १९३८ अर्थात् ३० जुलाई, सन् १८८१ को पूर्वोक्त बाबू बिहारीलाल ईसाई पुन: महाराज से मिलने आये। थोड़ी देर बातचीत होने के पश्चात् धर्म-विषय में वार्तालाप होने लगा। इस पर राव साहब ने उनसे कहा कि आप पादरी शूलब्रेड के शिष्य हैं और मैं स्वामी जी महाराज का, आज मेरा और आपका संवाद होगा। इसे बिहारीलाल ने स्वीकार कर लिया। राव साहब ने उनसे प्रश्न किया कि बाइबिल में लिखा है कि ईसामसीह ने एक बार उपदेश में कहा कि यदि आप लोगों में राई बराबर विश्वास हो तो इस पहाड़ को चलायमान कर सकते हो। अत: यदि आपका विश्वास पूरा है तो इस (सोहन नगरी) पहाड़ को अपनी जगह से हटा दो। पादरी साहब कुछ उत्तर न दे सके। और अन्त में उन्होंने यह कहकर पीछा छुड़वाया कि इसका उत्तर मैं अब नहीं दे सकता, पादरी शूलब्रेड से पूछकर उत्तर दूंगा। (लेखराम पृ० ६८९-६९०)

मुसलमान दासी-पुत्र

(मसूदा में काजी जी से वार्त्तालाप—अगस्त, १८८१)

२७ अगस्त, सन् १८८१ अर्थात् भाद्रपद शुक्ला को मुसलमानों की ईदुल-

फितर (रोजों की ईद) थी। काजी जी भी आ गये थे। २८ अगस्त को महाराज प्रातःकाल ८ बजे भ्रमण करके लौटे ही थे कि उन्होंने यवनों का झुण्ड अपने निवास स्थान की ओर आते देखा। उन्होंने चाँदमल कोठारी राज्य मसूदा को, जो उनके साथ मसूदा से आये थे, बुलाया और कहा कि देखो क्या बात है, ये लोग क्यों आ रहे हैं वे नीचे गये और यवन समुदाय के नेता से वृत्त ज्ञात करके स्वामी जी से कहा। उन्होंने कहा कि ऊपर बुलाओ। महाराज कुर्सी पर बैठ गये और वे लोग फर्श पर बैठ गये। आते ही काजी जी से निम्न प्रश्नोत्तर हुए—

काजी—आप हमें दासी-पुत्र कैसे बतलाते हैं ?

स्वामी जी—अपने कुरानशरीफ को देखो। इब्राहीम की दो स्त्रियाँ थीं एक विवाहिता सारा, दूसरी दासी हाजिरा, जिसे उन्होंने घर में डाल लिया था ......अतः आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?

काजी—कुरान में ऐसा नहीं लिखा।

स्वामी जी—(रामानन्द ब्रह्मचारी से कुरान की पुस्तक मंगाकर) देखिये, सूरा अनकबूत में लिखा है कि उसी साल (खुदा ने) उसे (इब्राहीम को) हाजिरा (के गर्भ) से जो सारा की दासी थी, इस्माईल प्रदान किया।

काजी—वह दासी तो थी, परन्तु निकाह कर लिया था।

स्वामी जी—फिर भी वह वास्तव में दासी ही तो थी, फिर आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?

इस पर काजी जी निरुत्तर हो गये और मुसलमान देखते के देखने रह गये।*

(देवेन्द्रनाथ २। २७८)

कबीर पन्थ

(कबीर पन्थी साधु के साथ मसूदा में धर्मचर्चा—अगस्त, १८८१)

अगस्त, सन् १८८१ के पहले सप्ताह में एक दिन एक साधु कबीरपंथी ब्यावर से स्वामी जी के पास मसूदा में आया और परस्पर धर्मचर्चा होने लगी।

स्वामी जी—आपके मत के कितने ग्रन्थ हैं ?

साधु जी—हमारे २४ करोड़ पुस्तक हैं।

स्वामी जी—यह बात मिथ्या है क्योंकि इतने ग्रन्थों की संख्या और रखने को कितना स्थान चाहिए (इस पर भी साधु जी कुछ न बोले)।

तब स्वामी जी ने फिर कहा कि तुम्हारे कबीर कौन थे और जब तुम

---

*इस शास्त्रार्थ का लेखरामलिखित विस्तृत विवरण पृ० २४१ पर भी है।

कबीरमत में होते हो तब उनकी प्रशादी और गुरु का उच्छिष्ट भी खाते हो कि नहीं ?

साधु जी—उच्छिष्ट खाते हैं। कबीर का जन्म नहीं है, अजन्म है। उसके माँ बाप भी नहीं।

स्वामी जी—कबीर जी काशी में कुकर्म से उत्पन्न हुए थे। इस कारण उसकी माँ ने उसे बाहर फेंक दिया था। उसी समय वहां पर (जहाँ पर कबीर पड़ा था) एक मुसलमान जुलाहा आ निकला। वह कबीर को उठाकर घर ले गया और अपना पुत्र सा जान उसको पाला और बड़ा किया। अब देखिये कि उसका जन्म भी हुआ और माँ बाप भी ठहरे।

साधु जी इस बात को सुनकर चुप रहे और कुछ उत्तर न दिया फिर और विषय पर बातें होती रहीं।("देश हितैषी", खंड १, संख्या ८, पृष्ठ ६, ७)

(लेखराम पृष्ठ ५४६)